P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-2) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

जीने के अधिकार में मरने का अधिकार शामिल नहीं है और भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा–309 की संवैधानिकता को चुनौती

भोमाराम
अतिथि व्याख्याता,
विधि विभाग,
जयनारायण व्यास
विश्वविद्यालय,
जोधपुर, राजस्थान, भारत

सारांश

इच्छा मृत्यु या दया मृत्यु वर्तमान में ऐसे सामाजिक वैधानिक मुद्दे हैं, जो हमारे संवैधानिक अधिकार, भारतीय दण्ड संहिता एवं माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के बीच चर्चित रहे हैं। मृत्यु मानव जीवन का अंतिम कड़वा सच है, लेकिन हाल ही में चर्चित इच्छा–मृत्यु की अवधारणा एक वैधानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक विवाद, मंथन एवं विमर्श का विषय रहा है। यक्ति काया राज्य का यहीं से विवाद शुरू होता है जो लोग प्राण एवं चेतना पर व्यक्तिगत अधिकार के हावी हैं वे इच्छा मृत्यु का समर्थन करते हैं और जो इस पर राज्य के अधिकार की बात करते हैं वे इच्छा–मृत्यु के प्रबल विरोधी हैं।

मुख्य शब्द : इच्छा मृत्यु, दया मृत्यु, भारतीय दण्ड संहिता।

प्रस्तावना

विश्व में विगत वर्षों से यह विचार–विमर्श चल रहा है कि किसी व्यक्ति को मरने का अधिकार होना चाहिए या नहीं, किन्तु अभी तक इस पर विद्वान एक मत नहीं हो पाये हैं। विशेष रूप से इसमें निहित खतरों को देखते हुए यह कहा जाता है कि व्यक्ति को अपना जीवन स्वयं समाप्त करने का अधिकार देना उचित नहीं है। इसका निर्णय कौन करेगा कि किसी व्यक्ति के जीने की उपयोगिता समाप्त हो गयी है। एक व्यक्ति के जीवन पर उसके परिवार के लोगों तथा समाज का भी हक होता है, यह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह कैसे करेगा। इसके अतिरिक्त परीक्षा में फेल हो जाने, प्रेम में असफल होने, राजनीतिक उद्देश्य से आमरण अनशन, नौकरी न पाने में असफल होने पर भी लोग आत्महत्या कर लेते हैं। स्त्रियों के मामले में भारत में इसका दुरूपयोग किया जा सकता है, दहेज या सती के मामलों में लोग आत्महत्या या मामला सिद्ध करके मुक्त हो सकते हैं।

इच्छा मृत्यु या दया मृत्यु वर्तमान में ऐसे सामाजिक वैधानिक मुद्दे हैं, जो हमारे संवैधानिक अधिकार, भारतीय दण्ड संहिता एवं माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के बीच चर्चित रहे हैं। मृत्यु मानव जीवन का अंतिम कड़वा सच है, लेकिन हाल ही में चर्चित इच्छा–मृत्यु की अवधारणा एक वैधानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक विवाद, मंथन एवं विमर्श का विषय रहा है। जहां तक इच्छा मृत्यु की वैधानिकता का प्रश्न है तो इसे हम प्राण एवं चेतना के अधिकार से जोड़कर देख सकते हैं। इस प्राण और चेतना पर किसका अधिकार हो। व्यक्ति काया राज्य का यहीं से विवाद शुरू होता है जो लोग प्राण एवं चेतना पर व्यक्तिगत अधिकार के हावी हैं वे इच्छा मृत्यु का समर्थन करते हैं और जो इस पर राज्य के अधिकार की बात करते हैं वे इच्छा–मृत्यु के प्रबल विरोधी हैं।

भारत में इच्छा मृत्यु एवं दया मृत्यु दोनों अवैधानिक है क्योंकि स्वयं अपनी मृत्यु का प्रयास करना आत्महत्या का प्रयास कहलाता है जो भारतीय दण्ड संहिता की धारा–309 के तहत दण्डनीय अपराध है। ऐसे अपराध के लिए धारा–309 भारतीय दण्ड संहिता के एक वर्ष तक साधारण कारावास या जुर्माना या दोनों की सजा का प्रावधान है, लेकिन नीदरलैण्ड, बेल्जियम, स्विट्जरलैण्ड, लग्जमबर्ग, ओबानिया और अमेरिका के तीन राज्यों–वाशिंगटन, ऑटेगन, मोनटेना में इच्छा–मृत्यु को वैधानिक मान्यता प्रदान कर दी गई है। हमारे माननीय उच्चतम न्यायालय ने हाल ही में अरुणा रामचन्द्र शानबाग नर्स के मामले में अप्रत्यक्ष रूप से कुछ प्रतिबंध लगाते हुए निष्क्रिय इच्छा मृत्यु के रूप में इच्छा मृत्यु की वैधानिकता के दरवाजे खोल दिए हैं और माननीय उच्चतम न्यायालय ने हाल ही में इस निर्णय का अनुसरण कॉमन कॉज (ए. रजिस्टर्ड सोसाइटी) बनाम् भारत संघ के वाद में किया।

इच्छा–मृत्यु के संदर्भ में हमारे इतिहास एवं पौराणिक दृष्टान्तों पर नजर डालना आवश्यक है। महाभारत काल में गंगा का पुत्र भीष्म पितामह की इच्छा–मृत्यु, महर्षि दधीचि का अस्थिदान, जैन धर्म के मोक्ष प्राप्ति हेतु संथारा प्रथा इत्यादि उदाहरण व्यक्ति के प्राण, चेतना एवं मृत्यु पर व्यक्तिगत अधिकारों को मान्यता देते हैं। सम्भवतया मृत्यु को जीवन पर विजय के रूप में देखा गया है, तभी तो बाईबिल में मृत्यु को मधुर समाधि के रूप में महामण्डित किया गया है।

मारूती श्रीपति दुबल बनाम महाराष्ट्र राज्य[1] में बम्बई उच्च न्यायालय ने इस मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा–309 जिसके अधीन आत्महत्या एक अपराध है, संविधान के अनुच्छेद–21 का उल्लंघन करती है, यह अवैध है। अनुच्छेद 21 के अधीन जीने के अधिकार में मरने का अधिकार भी शामिल है, अतः यह धारा–309 जो इस अधिकार को छीनती है, अनुच्छेद–21 का उल्लंघन करती है तथा अवैध है। मरने की इच्छा अस्वाभाविक नहीं है यह केवल असाधारण और विलक्षण है। कुछ परिस्थितियों में व्यक्ति का जीना एक भार स्वरूप हो जाता है, इस मामले में बम्बई के एक पुलिस कांस्टेबल ने नगर निगम द्वारा जीविकोपार्जन के लिए एक दुकान बनाने की अनुमति देने से इंकार कर दिये जाने पर निराश होकर नगर निगम के अधिकारी के कमरे में ही आग लगाकर आत्महत्या का प्रयास किया। माननीय उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वह व्यक्ति दोषी नहीं था, क्योंकि ऐसी स्थिति में उसके पास और कोई विकल्प नहीं था और भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा–309 को बम्बई उच्च न्यायालय ने इसे असंवैधानिक माना और अनुच्छेद–21 में जीने के अधिकार में मरने का अधिकार शामिल है। बम्बई उच्च न्यायालय के विपरीत आन्ध्रप्रदेश उच्च न्यायालय ने अपना निर्णय दिया –*चेन्ना जगदीश्वर बनाम् आन्ध्रप्रदेश राज्य*[2] इस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद–21 में प्रदत्त जीवन के अधिकार में मरने का अधिकार शामिल नहीं है, अतः भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा–309 को संवैधानिक माना और यह धारा जो कि अनुच्छेद–21 का उल्लंघन नहीं करती है और यह संवैधानिक है। और चेन्ना जगदीश्वर बनाम् आन्ध्रप्रदेश के निर्णय के प्रभाव को खत्म करने के लिए 1994 में **पी. रतीनाम बनाम भारत संघ**[3] इस मामले में उच्चतम न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत जीवन के अधिकार में मरने का अधिकार शामिल है और भारतीय दण्ड संहिता की धारा–309 में आत्महत्या का प्रयास करना एक दण्डनीय अपराध है जो वह असंवैधानिक है और वह अवैध है। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि भारतीय दण्ड संहिता का उक्त उपबंध क्रूर तथा न्याय विरूद्ध है क्योंकि वह ऐसे व्यक्ति को दण्ड देने का प्रावधान करता है जो पहले से पीड़ित है और जिसे मानिसक रोग से जूझने की सलाह की आवश्यकता है और दूसरों को कोई हानि नहीं पहुंचाता है। आत्महत्या का प्रयास, नैतिकता, धर्म, समाज या लोकनीति के विरूद्ध भी नहीं है तथा इस मामले में पिटीशनरों ने जिनके विरूद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा–309 के अधीन किए गए अपराध के लिए कार्यवाही की जा रही थी, भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा–309 की संवैधानिकता को चुनौती दी थी। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि विश्व के अनेक देशों में आत्महत्या का प्रयास अपराध नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा मारूति श्रीपति दूबल के मामले में दिए गए निर्णय का अनुसरण किया। मारूति श्रीपति दूबल बनाम महाराष्ट्र राज्य तथा पी. रतीनाम बनाम् भारत संघ के मामलों में दिए गए निर्णयों के प्रभाव को खत्म करने के लिये उच्चतम न्यायालय के पांच न्यायमूर्तियों की संविधान पीठ ने अपने आधुनिक निर्णय *ज्ञान कौर बनाम् पंजाब राज्य*[4] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद–21 के अन्तर्गत जीवन के अधिकार में मरने का अधिकार शामिल नहीं है और भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा–309 और धारा–306 संवैधानिक है और विधि मान्य है। जीवन के अंतिम क्षण तक गरिमा से मरने के अधिकार की तुलना जीवन की सामान्य अवधि को कम करके अप्राकृतिक रूप से मरने का अधिकार से नहीं की जा सकती है। भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा–309 संविधान के अनुच्छेद–21 और अनुच्छेद–14 का उल्लंघन नहीं करती है और वह संवैधानिक है।

न्यायमूर्ति श्री जे.एस. वर्मा ने सर्वसम्मति से न्यायालय का निर्णय सुनाते हुए कहा कि ''जीवन का कोई पहलू जो इसे गरिमामय बनाता है वह अनुच्छेद–21 में निहित है, न कि वह जो इसे समाप्त करता है।'' मरने का अधिकार यदि कोई है भी तो वह जीने के अधिकार से असंगत है, जैसे मृत्यु और जीवन एक दूसरे के विरोधी है।

न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि जीवन का अधिकार जिसमें गरिमामय जीवन भी आता है, इसका यह तात्पर्य ऐसा अधिकार है जो प्राकृतिक जीवन के अन्त तक बना रहता है। इसमें मृत्यु तक एक गरिमापूर्ण जीवन भी शामिल है और इसमें गरिमापूर्ण मृत्यु भी है। इसके मरणासन्न व्यक्ति के गरिमापूर्ण मरने का अधिकार भी आता है, जब व जीवन के आखिरी क्षण की प्रतीक्षा में है किन्तु जीवन अवधि के अन्त में गरिमापूर्ण ढ़ंग से मरने के अधिकार को जीवन की प्राकृतिक अवधि को कम करके अप्राकृतिक मृत्यु का अधिकारा नहीं समझा जा सकता है।

मुख्य बिन्दु

दया मृत्यु/इच्छामृत्यु का उद्देश्य

सुप्रीम कोर्ट ने कुछ समय पहले ही एक ऐतिहासिक फैसले में कहा है कि कोमा में जा चुके या मौत के कगार पर पहुंच चुके लोगों के लिए वसीयत (लिविंग विल) के आधार पर निष्क्रिय इच्छामृत्यु की मंजूरी दी जा सकती है। सीजेआई जस्टिस दीपक मिश्रा को 5 जजों की पीठ ने 538 पेज के फैसले में कहा, संविधान के अनु. 21 के तहत व्यक्ति को अगर गरिमा के साथ जीने का हक है तो उसे सम्मान से मरने का भी हक है।

पीठ में शामिल जस्टिस डीवाई चंद्रचूड़ ने कहा कि स्वाभिमान के साथ जीना हमारे जीवन जीने के अधिकार का अभिन्न अंग है। जीवन और मृत्यु को अलग नहीं किया जा सकता। हर क्षण हमारे शरीर में बदलाव होता है। बदलाव का नियम है। जीवन को मौत से अलग नहीं किया जा सकता। मृत्यु जीने की प्रक्रिया का ही हिस्सा है। सुप्रीम कोर्ट ने यह भी कहा कि इच्छामृत्यु के लिए लिखी गई लिविंग विल (वसीयत) कानूनी तौर पर मान्य होगी। कोर्ट ने विस्तृत दिशानिर्देश जारी किए हैं।

सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि कोर्ट के तय किए गए दिशानिर्देश इस पर कानून बनने तक प्रभावी रहेंगे। कोर्ट ने इस मामले में 12 अक्टूबर को फैसला सुरक्षित रखा था।

उम्र 18 हो या 80 की, जिंदगी सबको प्यारी – साहित्य की समीक्षा

पीठ ने फैसले में कहा कि जीवन और मृत्यु को सदियों से विचारकों, दार्शनिकों, लेखकों ने अपने–अपने तरीके से परिभाषित किया है। कुछ लोगों ने इस बेहद प्रभावी तरीके से दर्शाया है। स्वामी विवेकानन्द मानते थे कि जीवन एक ज्योति की तरह है, जो निरन्तर जलती रहती है। अगर कोई वाकई जिंदगी चाहता है, तो उसे इसे पाने के लिए हर पल मरना होगा। अंग्रेजी लेखक जॉन ड्राइडेन ने कहा है कि जीवन एक धोखा है, लोग छल को पसंद करते हैं। कोई भी इस पर विचार नहीं करता है कि जीवन का लक्ष्य कब दफन हो जाता है। व्यापक तौर पर देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि हर व्यक्ति को जिंदगी प्यारी होती है, चाहे वह 18 साल का हो या फिर 80 साल का। वह पतझड़ के पत्ते की तरह जीवन के प्रति वैसा व्यवहार नहीं करता है।

क्या है आवश्यक काल्पनिक दिशा–निर्देश?

कोर्ट ने साफ कहा है कि इच्छामृत्यु की इजाजत कुछ आवश्यक दिशानिर्देश के तहत ही दी जा सकती है। कानून बनने तक कोर्ट के दिशानिर्देशों का पालन अनिवार्य। इच्छामृत्यु से पहले इस बात को सुनिश्चित करना अनिवार्य है कि लिविंग विल को मजिस्ट्रेट के सामने तैयार किया गया है और दो गवाह इस दौरान मौजूद रहेंगे। अन्यथा इसका दुरुपयोग हो सकता है।

परिवार व डॉक्टर की मंजूरी जरूरी

सुप्रीम कोर्ट ने साफ किया है कि लिविंग विल पर भी मरीज के परिवार या दोस्त की इजाजत जरूरी होगी। साथ ही विशेषज्ञ डॉक्टर का बोर्ड इजाजत देगा, जो यह तय करेगा कि मरीज का अब ठीक हो पाना नामुमकिन है।

कैसे होता है आवेदन ?

जहां भी इच्छामृत्यु की अनुमति दी गई है, सभी देशों में मरीज को एक लिखित आवेदन करना होता है। यह सुनिश्चित किया जाता है कि मरीज को इसकी जानकारी हो या उसके परिजनों को पता हो कि वो क्या करने जा रहे हैं। अमरीका में इच्छामृत्यु के आवेदन के साथ–साथ दो गवाह भी पेश करने होते हैं।

अरूणा रामचन्द्र शानबाग बनाम भारत संघ[5]

इस मामले में मुम्बई की पिंकी वीरानी ने अरूणा रामचन्द्र शानबाग के निकटतम मित्र का दावा करते हुए एक रिट याचिका दायर किया और प्रत्यर्थी को यह निर्देश दिये जाने के लिए एक प्रार्थना किया कि अरूणा की शांति से मृत्यु हो सके, इसलिए उसे भोजन पहुंचना बंद कर दिया जाए।

तथ्य यह थे कि अरूणा किंग एडवार्ड मेमोरियल हॉस्पिटल, परेल, मुम्बई में नर्स थी। उस पर चिकित्सालय के एक मेहतर द्वारा कुत्ते की एक चेन उसके गर्दन में लपेटकर और इससे पीछे की ओर झटके से खींचकर हमला किया गया। उसने उसका बलात्कार करने का प्रयत्न किया, किन्तु जब उसने देखा कि उसे मासिक धर्म हो रहा था तो उसने उससे गुदा–मैथुन कर दिया। इस दौरान वह हिल–डुल न सके, इसलिए उसने चेन उसकी गर्दन के चारों ओर मरोड़ दिया। कुत्ते की चेन से गला घोंटने के कारण दिमाग को ऑक्सीजन पहुंचना बंद हो गया था तथा उसका दिमाग क्षतिग्रस्त हो गया था। कार्टेक्स या दिमाग के किसी अन्य भाग को क्षति हुई थी तथा दिमाग के स्टेम को आन्तरिक चोट पहुंची थी तथा सरवाइकल कार्ड को भी चोट पहुंची थी। घटना उस समय की है जब उसकी आयु 36 वर्ष के लगभग थी और न्यायालय का निर्णय दिये जाने के समय उसकी आयु 60 वर्ष की थी। उसकी शारीरिक स्थिति बहुत कमजोर हो गई थी। वह एक ढ़ांचे की तरह रह गई थी तथा भार में वह पंख की तरह रह गई थी। उसके बड़े सारे हो गए थे तथा सतत निष्क्रिय स्थिति में भी उसका मस्तिष्क वास्तव में मृत हो चुका था, उसे केवल कुचलकर भोजन उसके मुंह में रखकर दिया जाता था। उच्चतम न्यायालय द्वारा गठित चिकित्सकों की समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर पाया गया कि अरूणा का कुछ मस्तिष्क सक्रिय था, परन्तु बहुत कम था, वह अपने इर्द–गिर्द लोगों को पहचानती थी और अपनी पसंद या नापसंद कुछ गले की आवाज से और अपने हाथ को कुछ हिला–डुलाकर व्यक्त करती थी। व अपनी पसंद का भोजन मछली व चिकेन सूप पाने पर मुस्कराती थी। उसकी नाड़ी की गति, श्वास की गति तथा रक्तचाप सामान्य थे। वह अच्छी तरह पलकें चला सकती थी और अपने चिकित्सकों को देख सकती थी। मुंह के द्वारा भोजन खिलाए जाने पर वह एक चम्मच भर पानी कुछ शक्कर तथा मसला हुआ केला ले पाती थी। वह अपने ऊपरी होठों पर लगे केले के पेस्ट तथा शक्कर को भी चाटती थी और निगलती थी। कमरे में कई लोगों के आ जाने पर वह क्षुब्ध हो जाती थी, किन्तु कोमलता से स्पर्श किये जाने या पुचकारे जाने पर वह शान्त हो जाती थी। वह भोजन पचा पाती थी तथा उसका शरीर अन्य अनैच्छिक कार्यों को किसी सहायता के बिना करता था। यह पूरी अधिसंभाव्यता थी कि वह जिस स्थिति में थी, उसमें मृत्यु तक बनी रहेगी। उसके विक्षिप्तपन में कोई सुधार नहीं हो सका था और बहुत वर्षों तक यथावत रहा था।

उसके माता–पिता की मृत्यु हो चुकी थी और उसके घनिष्ठ संबंधियों का जब से उस पर दुर्भावनापूर्ण हमला हुआ था, उसमें कोई हित नहीं था। सतत् निष्क्रिय स्थिति में होने वाले व्यक्ति का जीवन समर्थन वापस लेना या वह व्यक्ति जो इस मामले के निर्णय लेने के लिए अन्यथा अक्षम है, उच्चतम न्यायालय ने दो न्यायाधीशों, न्यायाधीश मार्कण्डेय काटजू तथा न्यायाधीश ज्ञान सुधा मिश्रा के माध्यम से निष्क्रिय इच्छा–मृत्यु की अनुमति की विधि प्रतिपादित किया जो कि इस विषय पर संसद द्वारा कानून बनाने तक बनी रहेगी।

1. यह चिकित्सालय के कर्मचारी थे जो लम्बे समय से अरूणा की देखरेख कर रहे थे, जो वास्तव में उसके मित्र थे जो इस प्रकार का निर्णय ले सकते थे, किन्तु उन लोगों ने स्पष्ट रूप से अरूणा को जीवित रखे जाने की इच्छा व्यक्ति की थी। यदि चिकित्सालय के कर्मचारी भविष्य में किसी समय अपना मन बदल देते हैं तो उन्हें मुम्बई उच्च न्यायालय को जीवन समर्थन वापस लेने के लिए आवेदन करना पड़ेगा।
2. संविधान के अनुच्छेद–226 के अधीन उपयुक्त आदेश या निर्देश देने के लिए न कि रिट के लिए प्रार्थना करते हुए आदेशों को पारित किए जाने के लिए एक याचिका की जा सकती है। निकटतम संबंधी या निकटतम मित्र या चिकित्सकों या चिकित्सालयों के

कर्मचारियों द्वारा उपरोक्त प्रकार के अक्षम व्यक्ति का जीवन समर्थन वापस लिए जाने के लिए प्रार्थना करते हुए दायर प्रार्थना पर उच्च न्यायालय को अनुच्छेद 226 के अधीन उपयुक्त आदेशों को पारित करने के लिए बहुत शक्ति देता है।

कॉमन कॉज (ए रजिस्टर्ड सोसाइटी) बनाम् भारतीय संघ[6]

इस मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने पांच जजों की पीठ ने मान्यता दी कि निष्क्रिय इच्छा–मृत्यु और जीने की इच्छा अग्रिम निर्देश को मंजूरी दी। तात्पर्य यह है कि अब राइट टू डायन विद डिग्निटी एक मौलिक अधिकार है। यह निर्णय भारत के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा, न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी, न्यायमूर्ति ए.एम. खानविलकर, न्यायमूर्ति डी.वाई. चन्द्रचूड़ और न्यायमूर्ति अशोक भूषण की खण्डपीठ ने दिया है। इस मामले को तीन न्यायपीठ द्वारा संदर्भित किया गया था जिसमें कहा गया था कि पंजाब की ज्ञान कौर बनाम् राज्य के मामले में संविधान पीठ ने सक्रिय या निष्क्रिय इच्छा–मृत्यु की वैधता पर फैसला नहीं सुनाया था। हालांकि पीठ ने फैसला सुनाया था कि अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद–21 के तहत गरिमा के साथ जीने के लिए गरिमा के साथ मरने का अधिकार शामिल था।

तीन जजों की खण्डपीठ ने तब उल्लेख किया कि अरूणा शानबाग बनाम् भारत संघ के सुनाया गया निर्णय एक गलत प्रस्ताव पर आधारित है कि पंजाब के ज्ञान कौर बनाम पंजाब राज्य के मामले में संविधान पीठ में निष्क्रिय इच्छा–मृत्यु को बरकरार रखा था। हालांकि कॉमन कॉज (ए रजिस्टर्ड सोसाइटी) बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में पांच न्यायाधीशों की पीठ ने अब सर्वसम्मति से यह माना है कि अरूणा रामचन्द्र शानबाग के मामले में दो न्यायाधीश पीठ ने गलत तरीके से कहा था कि निष्क्रिय इच्छा–मृत्यु हो सकती है, केवल ज्ञान कौर के मामले में निर्णय की एक गलत व्याख्या के माध्यम से कानून द्वारा कानून बनाया गया। न्यायाधीशों ने अपने फैसले में एक ''लिविंग बिल'' या एक ''एडवांस डायरेक्टिव'' प्रक्रिया भी रखी है जिसके माध्यम से बीमार लोग या खराब स्वास्थ्य वाले लोग जीवन समर्थन प्रणाली के साथ वनस्पतिक अवस्था में नहीं हर सकते हैं, यदि वे इसमें जाते हैं एक राज्य जब उनके लिए अपनी इच्छाओं को व्यक्त करना संभव नहीं होगा।

वर्षों से इच्छामृत्यु का मुद्दा एक जटिल मुद्दा रहा है, जिस पर न केवल अदालतों की सीमाओं के भीतर बल्कि कुलीनों, बुद्धिजीवियों और शिक्षाविदों के बीच भी गर्म बहस होती रही है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने हालांकि कॉमन कॉज (ए रजिस्टर्ड सोसाइटी) के मामले में अपने फैसले के माध्यम से भारत के संघ और एक अन्य ने अब भारत में निष्क्रिय इच्छामृत्यु की स्थिति को सुलझा लिया है। इस प्रकार गरिमा के साथ जीने के अधिकार और गरिमा के साथ मरने के अधिकार को अब शीर्ष अदालत ने एक बार और सभी के लिए मंजूरी दे दी है।

परिणाम

जिंदगी का एक नजरिया यह भी

पीठ ने दार्शनिक अंदाज में कहा कि जिंदगी में एक समय ऐसा भी आता है, जब जिंदगी का वसंत जम जाता है, बारिश सूखी हो जाती है, शरीर में कोई हलचल नहीं होती, जिंदगी के इंद्रधनुष रंगहीन हो जाते हैं और जिंदगी जो हर समय नृत्य करती नजर आती है, वह मंद पड़ जाती है। धीरे–धीरे मौत एक ऑक्टोपस की तरह जिंदगी को अपनी गिरफ्त में ले लेती है, वह अपनी भुजाओं से ऐसा जकड़ती है कि व्यक्ति कभी नहीं उठ पाता है।

वहीं, प्राचीन यूनानी दार्शनिक एपिक्यूरस ने मौत को एक अलग संदर्भ में देखा था। उन्होंने कहा था –

मैं मौत से क्यों डरूं ?
जब मैं हूं, तब मौत नहीं
जब मौत है, तब मैं नहीं
फिर मुझे क्यों डरना चाहिए ?
क्योंकि मौत का वजूद तो
तभी है, जब मैं नहीं होता हूं।

धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा था, हैरानी नहीं

महाभारत में धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा था कि हालांकि इंसान हर पल मौत को देखता है, फिर भी उसे महसूस होता है कि मौत की खामोशी उसे परेशान नहीं करती है। यही वजह है कि उसे ये चीजें कुछ भी हैरान नहीं करती है।

अर्नेस्ट हेमिंग्वे ने कहा था, मौत एक जश्न है [7]

अर्नेस्ट हेमिंग्वे ने अपनी किताब 'द ओल्ड मैन एंड द सी' में कहा है कि इंसान नष्ट हो सकता है, मगर उसे हराया नहीं जा सकता है। यानी गरिमामय जीवन कभी हार नहीं सकता और जीवन जहां गरिमामय मृत्यु से मिलता है, उसका मूल्य है। यह एक जश्न की तरह है।

निष्कर्ष व सुझाव

1. जीवन समर्थन बंद करने का निर्णय या तो माता–पिता या पति–पत्नि या अन्य घनिष्ठ मित्रों द्वारा लिया जाएगा। इनमें से सभी की अनुपस्थिति में ऐसा निर्णय निकटतम मित्र के रूप में कार्य करते हुए भी एक व्यक्ति के द्वारा अथवा व्यक्तियों के एक समूह के द्वारा भी लिया जा सकता है। यह रोगी की देखरेख करने वाले चिकित्सकों द्वारा भी लिया जा सकता है। फिर भी निर्णय रोगी के सर्वाधिक हित में सद्भावपूर्वक लिया जाना चाहिए।
2. यदि जीवन समर्थन वापस लेने का निर्णय निकटतम संबंधियों या चिकित्सकों या निकटतम मित्रों द्वारा भी लिया जाता है तो ऐसे निर्णय को संबंधित उच्च न्यायालय के अनुमोदन की आवश्यकता होती है।
3. मरीज की मृत्यु के लिए इलाज बंद करना या जीवर रक्षक प्रणालियों को हटाना इसे पूरी दुनिया में कानून को मान्यता देनी चाहिए।
4. मरीज मानसिक बीमारी के कारण मौत की मन्जूरी देने में असमर्थ हो, तो उसे मारने के लिए इराइतन दवाइयां देना यह भी पूरी दुनिया के लिए अविधिक है।
5. इसी प्रकार इच्छा मृत्यु जो भले ही मानवीय भावना से प्रेरित हो एवं पीड़ित व्यक्ति की असहनीय पीड़ को कम करने के लिए किया जाना हो।
6. किसी भी बीमार व्यक्ति को जो ठीक होना असंभव है और उसके लिए उसके घर वाले और वह खुद बहुत परेशान है, तो इसमें चिकित्सकों के परामर्श द्वारा इन सबके लिए संसद द्वारा एक अधिनियम पारित किया जाना चाहिए।
7. अगर कोई सामाजिक जिम्मेदारियों की मुक्ति के लिए ऐसा करता है, तो उसके लिए दण्ड का प्रावधान होना चाहिए।

अंत टिप्पणी

1. *1987, क्रिमिनल लॉ जर्नल 743*
2. *1988, क्रिमिनल लॉ जर्नल, 549*
3. *(1994) 3 ए.सी.सी. 394*
4. *(1996) एस.सी.सी. 649*
5. *ए.आई.आर. 2011 एस.सी. 1290*
6. *SC 9 March 2018*
7. *राजस्थान पत्रिका 10 मार्च 2018, पेज नं. 16*